ओ३म्

**‘ईश्वर की उपासना क्यों करें, करें या न करें?’**

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

हमें मनुष्य जन्म हमारे माता-पिता से मिला है। माता-पिता चाहते हैं कि हमारी सन्तानें हमारे अनुकूल हों और हमारी सेवा करें जिससे हमें सुख की अनुभूति हो। यह बात अपनी जगह पूर्णतया ठीक है। परन्तु क्या सन्तान को केवल माता-पिता की सेवा ही करनी चाहिये या ईश्वर के प्रति भी उसका कुछ कर्तव्य है, इस पर प्रत्येक व्यक्ति को पूरी गम्भीरता व सिद्दत से विचार करना चाहिये।

माता-पिता सन्तान को जन्म देते हैं और उसका पालन पोषण कर उसका शारीरिक, बौद्धिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति करते हैं। इसमें आयार्चों व उनके विद्वानों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सन्ताने शिक्षा समाप्त कर युवावस्था में धनोपार्जन करने में समर्थ हो जाती है। उसना विवाह कर दिया जाता है और इसके बाद माता-पिता अपने पौत्र-पौत्रियों की इच्छा करते हैं। सन्तान धनोपार्जन करती है जिस पर परिवार के सभी सदस्यों का अधिकार है। माता-पिता ने जन्म दिया व सन्तानों का पालन-पोषण किया है जब कि वह असहाय अवस्था में थे। वृद्धावस्था में माता-पिता असहाय हो जाते हैं। उन्हें अपने पुत्र वा पुत्रों से वृद्धावस्था में भोजन, रोगोपचार, वस्त्र, मान-सम्मान तथा रक्षा व सुरक्षा आदि की अपेक्षा व आवश्यकता होती है। पुत्रों का यह कर्तव्य है कि वह अपने परिवार, माता-पिता, पत्नी व सन्तानों की आवश्यकताओं की अपनी आय के साथ सन्तुलन बना कर उनकी पूर्ति करें। जो सन्तान माता-पिता की तन-मन-धन से सेवा करते हैं, उन्हें माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त होता है जिससे उनकी भौतिक उन्नति के साथ शारीरिक व आध्यात्मिक उन्नति तथा आर्थिक सुख-समृद्धि होती है।

मनमोहन कुमार आर्य

अब यह विचार करना है कि क्या ईश्वर के प्रति भी सन्तानों वा मनुष्यों का कोई कर्तव्य होता है या नहीं? ईश्वर ने यह सारा संसार हम सबके लिए बनाया है जिसमें हमारा सूर्य व इसके पृथिवी आदि अनेक गृह-उपग्रह हैं। पृथिवी को रत्नगर्भा भी कहते हैं। उसमें अन्न से लेकर, स्वर्ण व रत्नों आदि की रचना परमात्मा ने ही की है जिससे मनुष्य आदि प्राणियों को सुख प्राप्त हो सके। वस्तुतः हम माता-पिता से उत्पन्न होते वा जन्म लेते हैं परन्तु हमारी आत्मा को माता के गर्भ में भेजता परमात्मा है और सन्तानों के शरीरों को माता के गर्भ में रचना भी परमात्मा ही करता है। इसका कारण यह है कि यदि कोई माता-पिता चाहें तो भी वह अपने पुत्री या पुत्र का शरीर नहीं बना सकते। यद्यपि सन्तान का पालन-पोषण माता-पिता करते हैं, परन्तु माता-पिता तो केवल माध्यम होते हैं, उन्हें उनके अन्दर गुप्त व लुप्त रूप से सन्तान का पालन व पोषण करने की शक्ति व सामथ्र्य तो परमात्मा ही प्रदान करता है। इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा का भी सभी मनुष्यों और प्राणियों पर ऋण है जिसके लिए उन्हें ईश्वर के प्रति सदैव कृतज्ञ होना है। यह कृतज्ञता किस प्रकार से प्रदर्शित की जाए, इसी का नाम स्तुति, प्रार्थना और उपासना है।

स्तुति कहते हैं कि हमें ईश्वर के गुणों का वर्णन करना है। इसके साथ ही ईश्वर के उपकारों का स्मरण करना भी कुछ-कुछ स्तुति-प्रार्थना-उपासना के अन्तर्गत आता है। प्रार्थना में हम ईश्वर से अपने लिए कुछ मांगते हैं। जैसे ईश्वर हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में चलने की प्ररेणा दें। ईश्वर हमारे दुर्गुण, दुःखों व दुव्र्यसनों को दूर करे और जो कल्याणकारी गुण-कर्म-स्वभाव व पदार्थ हैं, वह सब हमकों प्राप्त कराये। उपासना में ईश्वर के उपकारों को स्मरण करने व स्तुति-प्रार्थना करने के लिए सुखासन, पद्मासन आदि किसी आसन में बैठकर इसे पूरा करना होता है। यह काम भली प्रकार सम्पादित हो इसके लिए यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान और समाधि का अपने जीवन में धारण व पालन करना आवश्यक व लाभदायक होता है। यम अंहिसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न कराना या छिपा कर कोई काम न करना), ब्रह्मचर्य अर्थात् पूर्ण संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करना और अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक धन आदि पदार्थों का संग्रह न करने को कहते हैं। नियम शौच (आन्तरिक मन आदि इन्द्रियों की व बाह्य शरीर की स्वच्छता), सन्तोष, तप (धर्माचार में कष्ट सहन करने का नाम है), स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान (ईश्वर का ध्यान व चिन्तन व उसकी व्यवस्था में पूर्ण विश्वास) को कहते हैं। इन यम नियमों के पालन से उपासना आदि की भूमि तैयार होती है। यम-नियमों का पालन करने वाला कोई व्यसन नहीं करता अर्थात् मद्यपान, धूम्रपान, नशा, सामिष भोजन, अधिक तड़क-भड़क वाला जीवन व्यतीत नहीं करता। इसके अतिरिक्त योगासन व प्राणायाम के द्वारा शरीर को निरोग व स्वस्थ बनाकर रखना होता है जो कि उपासना के लिए आवश्यक है। इसके बाद प्रत्याहार व धारणा की पांचवी व छठीं पादानें हंै तथा अन्त में ध्यान व समाधि का अभ्यास करना है जिसमें किसी गुरू की सहायता ली जा सकती या स्वाध्याय के ग्रन्थों से इन्हें जानकर किसी अनुभवी व्यक्ति का सान्निध्य व मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिये। यह भी ध्यातव्य है कि हमारा आचरण शुद्ध व पवित्र होना चाहिये। ऐसा करने से हम ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं और उसके ऋणों से आंशिक रूप से उऋण होते हैं।

जितना आवश्यक धनोपार्जन व भोजन आदि साधनों की प्राप्ति का करना है, उतना ही आवश्यक माता-पिता व परिवार के सदस्यों का सम्यक पालन करना और ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना व उपासना करना भी है। इस विषय में और अधिक जानने के लिए सत्यार्थ प्रकाश, पंचमहायज्ञ विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कार विधि तथा उपनिषद व दर्शन, मुख्यतः योग दर्शन आदि ग्रन्थों सहित वेदों का स्वाध्याय व अध्ययन करना चाहिये। इस अध्ययन व स्वाध्याय से हम अपने कर्तव्यों व उनके निर्वाह का भली प्रकार सम्पादन करना जान व सीख सकते हैं। आईये, उपासना का फल भी जान लेते हैं। उपासना करने से ईश्वर के प्रति निकटता बढ़ती है। उसके सम्पर्क से हमारे दुर्गुण, दुःख व दुव्यर्सन दूर होते हैं और कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव व पदार्थों की प्राप्ति होती है। आत्मा शुद्ध व पवित्र हो जाती है। ईश्वर व आत्मा का भली प्रकार ज्ञान होता है। इतना ही नहीं अपितु आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि पहाड़ के समान दुःख प्राप्त होने पर भी मनुष्य घबराता नहीं है। क्या यह छोटी बात है? नहीं, यह कोई साधारण या छोटी बात नहीं अपितु इतनी बड़ी बात है कि इससे अधिक बड़ी कोई बात हो ही नहीं सकती। यह ज्ञान व विश्वास हमें महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों को पढ़ने व उनका विचार, चिन्तन व मनन करने से होगा।

उपासना की विधि के बारे में जहां तक प्रश्न है, इसकी सर्वोंत्तम विधि महर्षि दयानन्द ने **“सन्ध्या”** नाम की एक छोटी सी पुस्तक में लिखी है। इसके दो उदाहरण जानने योग्य है। आर्य जगत के चोटी के विद्वान पं. युधिष्ठिर मीमांसक महामहोपाध्याय काशी में शास्त्रों के एक मर्मज्ञ विद्वान पं. देवनारायण तिवारी जी से दर्शनों का अध्ययन करते थे। वह महर्षि दयानन्द के प्रति दूसरों के मिथ्या प्रचार के कारण पूर्वाग्रह रखते थे। पंण्डित मीमांसक जी गुरूजी को घंटो उपासना व ध्यान में बैठे हुए देखते थे। एक बार उनके मन में विचार आया कि गुरूजी को स्वामी दयानन्द लिखित सन्ध्या की पुस्तक दिखाकर उस पर उनकी राय पूछी जाये। अतः स्थिति पर विचार कर उन्होंने पुस्तक के बाहर के आवरण को फाड़कर हटा दिया जिससे महर्षि दयानन्द के उस पुस्तक के लेखक होने का ज्ञान गुरू जी को न होे। यह पुस्तक पं. युधिष्ठिरजी ने गुरूजी को इस निवेदन के साथ प्रस्तुत की कि गुरूजी मैं इस पुस्तक के अनुसार सन्ध्या व उपासना करता हंू। मुझे पता नहीं कि इस पुस्तक के अनुसार सन्ध्या करना ठीक है या नहीं। आप इसे देख लें और मेरा इस विषय में मार्गदर्शन करें। इस घटना के बाद कई दिन बीत गये तो पंण्डित युधिष्ठिरजी ने अपने सहपाठी गुरूजी के पुत्र से पूछा कि गुरूजी को उन्होंने जो पुस्तक दी थी, उस पर गुरूजी ने उन्हें कुछ कहा नहीं और उनसे पूछने की उनकी हिम्मत नहीं हो रही है। **तब सहपाठी पुत्र ने बताया कि गुरूजी ने अपनी पुरानी पद्धति को छोड़कर आपकी दी हुई पुस्तक के अनुसार सन्ध्या करना आरम्भ कर रखा है।** इसके बाद एक दिन मीमांसक जी ने गुरूजी से उस पुस्तक पर उनकी राय पूछी तो गुरूजी ने उसकी प्रशंसा करने के बाद पूछा कि इस पुस्तक के लेखक कौन हैं? यह बताने पर कि इसके लेखक महर्षि दयानन्द संरस्वती हैं, **गुरूजी ने आश्चर्य से कहा कि क्या स्वामी दयानन्द इतने बड़े विद्वान थे?** यह घटना मीमांसक जी ने अपनी आत्म कथा में लिखी है।

इसी प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ हुआ। उनके पिता कट्टर पौराणिक थे और अपनी प़ति के अनुसार घण्टों नित्य पूजा पाठ करते थे। एक बार श्रद्धानन्द जी घर से लाहौर चले गये तो घर में रखी सन्ध्या व सत्यार्थ प्रकाश की उनके पुत्र की पुस्तकों को उन्हांने खाली समय में अपने यहां पूजा पाठ सम्पादित करने वाले पण्डित काशीराम से उनका पाठ करने को कहा। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी लेखनी से लिखा है कि पिता जी ने पं. काशीराम को कहा-“**पहले इनकी देखभाल कर लो तब सुनाओं, हम निन्दायुक्त नास्तिकपन के ग्रन्थ सुनना नहीं चाहते। पंडित काशीराम जी थे आदमी चतुर, उन्होंने सबसे पहले ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) का पाठ अर्थ सहित आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों पिताजी सुनते उनकी श्रद्धा बढ़ती जाती, तब पंडित काशीराम ने सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास सुनाया। पिता जी ने कहा-‘पंडित जी हम तो अविद्या में ही पड़े रहे। हमारा मोक्ष कैसे होगा? हमने तो निरर्थक क्रियाएं ही कीं, अब से वैदिक सन्ध्या करेंगें।’बस फिर क्या था, पिताजी ने वेदमन्त्र तथा उनके अर्थ कण्ठ (स्मरण) करना आरम्भ कर दिया। अब वैदिक संध्या और पंचायतन पूजा साथ ही साथ होने लगी।“** इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि ईश्वर की उपासना की विधि के लिए महर्षि दयानन्द लिखित पुस्तक “सन्ध्या” सर्वोत्तम पुस्तक है। यहां एक बात यह भी कह दें कि यदि हम विधिपूर्वक उपासना नहीं करेंगे तो हमारे मृत्यु के बाद होने वाले भावी जन्मों में हमें भारी हानियां उठानी पड़ेगी जिसका समाधान निकल पायेगा या नहीं, अथवा हम गिरते ही रहेंगे, कहना कठिन है। एक बात और भी कहना समीचीन है कि महर्षि दयानन्द प्रणीत सन्ध्या-उपासना पद्धति के अतिरिक्त अन्य जितनी पद्धतियां प्रचलित है उनसे वह लाभ नहीं होता जो योगदर्शन व वैदिक सन्ध्या की विधि से उपासना करने से होता है। निर्णय करना सुविज्ञ पाठकों के हाथ में है। अपना हित व अहित देखकर निर्णय करना उचित है।

आईये, जीवन को पवित्र बनाने और नित्य प्रति ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना सहित पंच महायज्ञों को करने का व्रत लें। यही सत्य-शिवं व सुन्दरम् मार्ग है। इसका करना या न करना आपके अपने हाथों में है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**